Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2019 GISRRJ | Volume 2 | Issue 1 | ISSN : 2582-0095

कालिदास की कृतियों में चित्रित धार्मिक क्रियाएँ

डॉ० रजनीश कुमार पाठक
प्रवक्ता (संस्कृत)
किशोरी रमण इण्टर कॉलेज,
मथुरा, (उत्तर प्रदेश) भारत

सारांश – प्राचीनकाल से ही भारतीय समाज में धर्म की प्रतिष्ठा सर्वोपरि रही है। धर्म का सर्वाधिक प्रभाव मानव-मन पर पड़ता है, इसके द्वारा वह अपने व्यावहारिक जीवन को संयमित करने में सफलता प्राप्त करता है। धर्म को व्यवहार के धरातल पर प्रतिष्ठित करने के लिए यज्ञ और दान आदि क्रियाएँ अपेक्षित होती है। समाज में आर्थिक समानता के लिए तथा अनुचित धन-संग्रह रोकने के लिए दान को धार्मिक महत्त्व दिया जाता है। कालिदास के ग्रन्थों में वर्णित धार्मिक क्रियाएँ भारतीय संस्कृति की मूल भावना को प्रदर्शित करती है।

प्रमुख शब्द – यज्ञ, दान, तीर्थ, मूर्ति-पूजा, सूर्योपासना, व्रत, उपवास, प्रदक्षिणा, नीराजना, सङ्गम।

भारतवर्ष में मानव जीवन का लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति माना गया है, इस हेतु नैतिक नियमों में आबद्ध व्यक्ति अपनी इच्छा तथा आकांक्षाओं को सुव्यवस्थित, संयोजित एवं सुंखलित रखना चाहता है। धर्म इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति करता हुआ मानव जीवन को आदर्श की ओर गति देता है। कालिदास के समय में वैदिककाल से प्रचलित यज्ञ, दानादि धार्मिक कृत्यों के अतिरिक्त मूर्तिपूजा, तीर्थाटन, व्रत, उपवास इत्यादि विभिन्न धार्मिक क्रियाओं का प्रचलन धर्म के क्षेत्र में हो चुका था, जिनका व्यवहार कवि ने अपने काव्यों में दिखलाया है।

I. यज्ञ -उपनिषदों में धर्म के तीन स्कन्ध (आधार स्तम्भ) प्रतिपादित हैं - यज्ञ, अध्ययन और दान। कालिदास ने अपने ग्रन्थों में यज्ञों के प्रति विशेष श्रद्धा प्रकट की है। प्रायः सभी रचनाओं में उन्होंने यज्ञों की चर्चा एवं उनके अनुष्ठानों का व्यवहार दिखलाया है। कालिदास यज्ञ की अग्नि को पापों तथा विघ्नों का विनाश कर पवित्र करनेवाला मानते हैं -

वैतानास्त्वां वह्नयः पावयन्तु - अभिज्ञान०- 4/8

अभिज्ञानशाकुन्तल के वर्णन से यह ज्ञात होता है कि राज-प्रासाद में यज्ञशाला होता था, जिसमें नियमित यज्ञादि हवन पुरोहितों द्वारा सम्पादित किया जाता था। विशिष्ट व्यक्तियों, अतिथियों का स्वागत-सत्कार इसी यज्ञशाला में किया जाता था। इस नाटक के पञ्चम अङ्क में आश्रम से आए कण्व के शिष्यों का सत्कार इसी यज्ञशाला में किए जाने का निर्देश राजा दुष्यन्त देते हैं। राजा दिलीप इन्द्र को प्रसन्न करने के लिए नियमित रूप से यज्ञ का अनुष्ठान करवाते रहते थे क्योंकि उनका यह विश्वास था कि यज्ञ करने से देवता प्रसन्न और पुष्ट होते हैं। इससे इन्द्र भी प्रसन्न होकर आकाश को दुहते थे और जल बरसाते थे। जिससे खेत अन्न से भर जाते थे। इसतरह, राजा दिलीप और इन्द्र एक दूसरे की सहायता करके प्रजा का पालन करते थे-

दुदोह गां स यज्ञाय सस्याय मधवा दिवम्।
सम्पद्विनिमयेनोभौ दधतुर्भुवनद्वयम्।। - रघुवंश-1/26

कालिदास ने अश्वमेध, विश्वजित् तथा पुत्रेष्टि नामक यज्ञों का उल्लेख विशिष्ट रूप से किया है। इसमें अश्वमेघ यज्ञ राजनीतिक होता था जो दिग्विजय की कामना से किया जाता था। राजा दिलीप के प्रसङ्ग में इस यज्ञ का वर्णन किया गया है, जिन्होंने निन्यानवे अश्वमेघ-यज्ञ निर्विघ्न पूरे किये।[1] विश्वजित् यज्ञ दिग्विजय के अनन्तर सम्पन्न होता था। इसीलिए इसे 'महाक्रतु' कहते थे। इसमें यजमान द्वारा अपने समस्त कोष के दान का विधान था **(स विश्वजितमाह्वे यज्ञं सर्वस्वदक्षिणम्**-रघुवंश-4/86)। रघुवंश के प्रथम सर्ग में (श्लोक-80) वरुण के दीर्घसत्र यज्ञ का उल्लेख है, जिसमें कामधेनु भी उपस्थित थी **(हविर्ष दीर्घसत्रस्य..)**। पुत्रेष्टि-यज्ञ पुत्र-प्राप्ति के लिए किया जाता था। दशरथ के लिए ऋष्यशृङ्ग आदि ऋत्विजों ने इस यज्ञ का सम्पादन किया था [(2)]। साथ ही विक्रमोर्वशीय में यह उल्लेख किया गया है कि केवल नैमिषेय यज्ञ के समय ही राजा पुरुरवा उर्वशी से अलग हुए थे।

अभिज्ञानशाकुन्तल के निर्देश से यह अनुमान होता है - कि यज्ञों में श्रोत्रियों के द्वारा पशुबलि दी जाती थी **(पशुमारणकर्मदारुणः**-अभिज्ञानशाकुन्तल-6/1)। यज्ञों के अवसर पर यूप गाड़े जाते थे। यज्ञों की समाप्ति के बाद भी ये यज्ञ- स्तम्भ स्मारक के रूप में रहते थे। सुदक्षिणा के साथ राजा दिलीप को वशिष्ठाश्रम जाते समय ऐसे यूप स्तम्भों वाले अनेक ग्राम दिखलाई पड़े थे **(ग्रामेषु यूपचिह्नेषु।** रघुवंश-1/44), जो श्रोत्रियों को दान में दिए गए थे। इसीतरह, कुशावती से अयोध्या जाते हुए राजा कुश को सरयू तट पर बड़े-बड़े यज्ञ करनेवाले रघुवंशी राजाओं के गाड़े हुए सैकड़ों यज्ञ स्तम्भदिखलाई पड़े थे **(यूपानपश्यच्छतशो रघूणाम्।** रघुवंश-16/35)। पुष्पक विमान से अयोध्या आते हुए राम और सीता ने भी सरयू तट पर यूप गड़े हुए देखे थे।

इस प्रकार, यज्ञ के प्रत्येक क्रिया-कलाप में कालिदास अपनी आस्था प्रकट करते हैं। यज्ञों की अवधि लम्बी और छोटी भी होती थी। महर्षि कण्व के तपोवन में सम्पादित होनेवाला यज्ञ लम्बी अवधि का था। जिस अन्तराल में दुष्यन्त और शकुन्तला का गान्धर्व-विवाह सम्पन्न हुआ था। यज्ञ की समाप्ति पर ही दुष्यन्त को हस्तिनापुर जाने के लिए विदाई दी गई थी

इष्टिं परिसमाप्य ऋषिभिर्विसर्जितः। - अभिज्ञानशाकुन्तल-4/विष्कम्भक

II.दान :-वैदिक-काल से ही दान को प्रमुख धार्मिक कार्य माना गया है। ऋग्वेद के अनेक सूक्तों में दान की प्रशंसा की गई है। बृहदारण्यकोपनिषद् (5/2)में भी दाम्यत (अपने इन्द्रियों को वश में रखो), दत्त (दान दो) तथा दयध्वम् (दया करो) का उपदेश दिया गया है। कालिदास भी दान की गौरवगाथा गाते हुए श्रान्त नहीं होते। कवि का स्पष्ट उद्घोष है कि जैसे बादल समुद्र से जल लेकर पुनः पृथ्वी पर बरसा देते हैं, वैसे ही महात्मा लोग भी धन को दान करने के लिए ही जुटाते हैं -

आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव। - रघुवंश-4/86

रघुवंश में राजा रघु ने विश्वजित् यज्ञ में अपना समस्त कोष दान में दे दिया था। कालिदास के वर्णन से यह पता चलता है कि दान के रूप में धन के अतिरिक्त ग्रामादि भी दिये जाते थे। राजा दिलीप ने यज्ञ-स्तम्भ से युक्त ऐसे ग्राम वशिष्ठाश्रम जाते समय देखे थे, जो श्रोत्रियों को दान में दिये गए थे। इसीप्रकार राजा कुश ने कुशावती नगरी वेदपाठी ब्राह्मणों को दान देकर कुलपरम्परा की राजधानी अयोध्या चले गए थे। [(3)]

कालिदास ने रघुवंश के पञ्चम सर्ग में दान का बड़ा ही उज्ज्वल दृष्टान्त प्रस्तुत किया है। वहाँ वरतन्तु के शिष्य कौत्स गुरुदक्षिणा के लिए धन माँगने राजा रघु के पास तब पहुँचते हैं जब वे अपनी सारी सम्पदा यज्ञ में दान कर चुके होते हैं। फिर भी रघु कुबेर से धन पाने का उद्योग करते हैं। इतने में कोष में सोने की वृष्टि होती है। राजा का आग्रह है कि वरतन्तु-शिष्य सम्पूर्ण धन ले जाय और उधर शिष्य का आग्रह है कि वह अपने काम से अधिक एक कौड़ी भी न छूवेगा। दाता और ग्रहीता का यह आग्रह उदाहरणीय है।

वस्तुतः समाज में आर्थिक समानता के लिए तथा अनुचित धन-संग्रह रोकने के लिए दान को धार्मिक महत्त्व दिया गया है। धनवान् व्यक्ति का यह कर्त्तव्य है कि वह विपन्न व्यक्ति को दान द्वारा संकट-मुक्त करे। आज के आर्थिक युग में भी महत्त्वपूर्ण धार्मिक-कार्य मानकर दान करने में लोगों की प्रवृत्ति देखी जाती है।

III. तीर्थ -प्राचीनकाल से ही भारतवर्ष में तीर्थ-स्थानों को महत्त्व दिया गया है। कालिदास ने भी तीर्थाटन को महत्त्वपूर्ण धार्मिक कृत्य माना है। कुमारसम्भव (6/56) में उन्होंने तीर्थ का लक्षण दिया है कि जहाँ महान् लोग निवास करें वह स्थान ही तीर्थ है-

यदध्यासितमर्हद्भिस्तद्धि तीर्थ प्रचक्षते।

साधारणतः धार्मिक क्रियाओं के सौकार्य की दृष्टि से तीर्थ नदियों या जलाशयों के निकट होते थे। अभिज्ञानशाकुन्तल में शचीतीर्थ ऐसा ही तीर्थ था, जहाँ जल की स्तुति करते समय शकुन्तला के हाथ से दुष्यन्त की अंगूठी गिर गई थी। [(4)] तमसा नदी के तट पर यत्र-तत्र तपस्वियों का निवास था, जिससे तीर्थों की संख्या अगणित थी। दक्षिण-सागर के तट पर गोकर्ण नामक तीर्थ था, जहाँ भगवान् शंकर प्रतिष्ठित थे (**त्रिपुष्करेषु त्रिदशत्वमाप** – रघुवंश-18/31)। अभिज्ञानशाकुन्तल में दुष्यन्त के पुरोहित सूचना देते हैं कि शकुन्तला को कोई स्त्री उड़ाकर अप्सरस्तीर्थ की ओर ले गई। इसी नाटक के प्रथम अङ्क से यह पता चलता है कि शकुन्तला की ग्रह-शान्ति के निमित्त महर्षि कण्व सोमतीर्थ गए हुए हैं। साथ ही, राज्यभिषेक के समय तीर्थों से लाए गए जल से अभिषेक का उल्लेख भी कवि करते हैं।

इन प्रसङ्गों से यह स्पष्ट हो जाता है कि कालिदास के काल में तीर्थ एवं तीर्थाटन को महत्त्वपूर्ण धार्मिक कृत्य माना जाता था। आज भी लोग अपनी सामर्थ्य एवं आस्थानुसार तीर्थाटन करते है।

IV. मूर्ति-पूजा : - महाकवि कालिदास के समय में वैदिक देवताओं के स्थान पर पौराणिक देवताओं की पूजा का प्रचलन बढ़ गया था। इन्द्र, अग्नि, वरुण, यम, त्वष्टा आदि वैदिक देवता अब केवल यज्ञों में ही आहूत होकर हव्य पाते थे जैसा कि वैदिक यज्ञों की पद्धति थी। किन्तु ब्रह्मा, विष्णु, शिव, स्कन्द आदि प्रतिमाओं के रूप में यज्ञेतर स्थलों में विशेष रूप से मंदिरों में पूजा के पात्र बन गए थे। इस तरह कालिदास के युग में प्रतिमा-पूजन की प्रथा प्रारम्भ हो चुकी थी।

कवि ने अपने ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर मंदिरों में प्रतिष्ठित प्रतिमाओं का उल्लेख किया है। उनकी दृष्टि में प्रतिमाएँ देवताओं का मूर्तरूप होती हैं, उनकी उपासना, ध्यान, अर्चन इत्यादि उनके सानिध्य के लिए अनिवार्य है। विधिपूर्वक पूजन के निमित्त कुश, दूर्वा, अक्षत एवं पुष्प आदि आवश्यक द्रव्यों का निर्देश भी कवि ने किया है।

रघुवंश में कालिदास ने वर्णन किया है कि अयोध्यापुरी का जीर्णोद्धार राजा कुश द्वारा करवाया गया था। उस नगरी में विशाल प्रतिमा-गृह विद्यमान थे। नगरी के उद्धार के समय पशुओं का उपहार दिया गया। वास्तुकला में निपुण शिल्पियों ने वहीं रकहर पूरी नगरी का नवनिर्माण किया

ततः सपर्यां सपशूपहारां पुरः परार्ध्यप्रतिमागृहायाः। - रघुवंश-6/34

इसतरह अयोध्या में विभिन्न देवताओं के परार्ध्य (बहुमूल्य, विशाल) मन्दिर थे। इन मन्दिरों में जिन देवताओं की पूजा की गई, उन्होंने अपनी मूर्तियों में आकर कृपा के योग्य राजा अतिथि (कुश-पुत्र) पर कृपा की -

अयोध्यादेवताश्चैनं प्रशस्तायतनार्चिताः।

अनुदध्युरनुध्येयं सान्निध्यैः प्रतिमागतैः।। -रघुवंश-17/36

एक रघुवंशी राजा 'व्युषिताश्व' ने काशी के विश्वेश्वर महादेव की आराधना कर 'विश्वसह' नामक पुत्र पाया था।[(5)] दक्षिण-सागर के तट पर अवस्थित गोकर्ण में भगवान् शंकर प्रतिष्ठित थे (**त्रिपुष्करेषु त्रिदशत्वमाप** -रघुवंश - 18/31)। उज्जयिनी के महाकाल मन्दिर का उल्लेख कालिदास अत्यन्त भक्ति के साथ करते हैं। इन्दुमती-स्वयंवर के प्रसङ्ग में सुनन्दा अवन्ति प्रदेश के राजा का वर्णन करती हुई कहती है कि यह राजा महाकाल के मन्दिर के समीप ही रहता है। चन्द्रमा को धारण करनेवाले शंकर के सामीप्य के कारण कृष्णपक्ष की रात्रियों को भी शुक्लपक्ष की रात्रियों के समान समझकर प्रियाओं के साथ विहार करता है-

असौ महाकालनिकेतनस्य वसन्नदूरे किल चन्द्रमौलेः।

तमिस्रपक्षेऽपि सह प्रियाभिर्योत्स्नावतो निर्विशति प्रदोषान्।। - रघुवंश-6/34

इसी प्रकार मेघदूत में कवि मेघ को उज्जयिनी के महाकाल-मन्दिर में शिव की संध्याकालीन आरती के समय अपनी नगाड़े जैसी धीर-गम्भीर ध्वनि को सफल बनाने का निर्देश देते हैं। इसी काव्य में स्कन्द के एक मन्दिर का उल्लेख कालिदास करते हैं, जो देवगिरि पर्वत पर था। यहाँ भी भगवान् स्कन्द की अर्चना कर उनपर आकाशगङ्गा के जल से धुले हुए फूल बरसाकर उन्हें स्नान कराने का निर्देश कवि मेघ को देते हैं।

इसके अतिरिक्त कालिदास घर-परिवार में स्थापित मूर्ति का भी सङ्केत करते हैं विवाह के समय मांगलिक अलंकरण से सुसज्जित पार्वती के द्वारा मेना ने कुलदेवता को प्रणाम करवाया था।[6] इससे प्रतीत होता है कि घर में कोई प्रतिमा प्रतिष्ठित होती थी। साथ ही उस समय कुलदेवता की प्रथम पूजा का प्रचलन समाज में हो चुका था।

इस प्रकार, कालिदास वैदिक युग की यज्ञ-परम्परा तथा इसके समानान्तर पौराणिक देवताओं की मूर्तिपूजा-इनदोनों ही धार्मिक कृत्यों का उल्लेख करते हैं। आज भी मूर्तिपूजा प्रचलित है। मन्दिरों अथवा प्रतिमागृहों में प्रतिष्ठित विभिन्न देवी-देवताओं की प्रतिमाओं की पूजा-अर्चना श्रद्धालुजन भक्तिपूर्वक करते हैं।

V. सूर्य-पूजा - कालिदास अपने युग में प्रचलित सूर्य-पूजा का भी व्यवहार दिखलाते हैं। शिव की आठ मूर्तियों में अन्यतम सूर्य की उपासना का निर्देश कवि ने विशेष रूप से विक्रमोर्वशीय में किया है। इस रूपक के चतुर्थ अङ्क के प्रवेशक में उर्वशी की एक सखी-चित्रलेखा यह बतलाती है कि भगवान् सूर्य की आराधना के लिए यहाँ सभी अप्सराओं की पारी बँधी हुई है - **अप्सरोवारपर्यायेणेह भगवतः सूर्यस्य पादमूलोपस्थाने वर्तत"।** चित्रलेखा आज अपनी इसी सूर्य-पूजा की पारी पर आई थी। यहाँ कवि द्वारा 'पादमूलो' के उल्लेख के आधार पर डॉ० भगवतशरण उपाध्याय यह कहते हैं कि इससे कालिदास ने भगवान् सूर्य की प्रतिमावाले एक मन्दिर का वर्णन किया है। [7] किन्तु, इस प्रवेशक के अन्त में सखी सहजन्या कहती है कि तो चलें, उदित होते हुए सूर्य की पूजा कर लें - **"उदयोन्मुखस्य भगवतः सूर्यस्योपस्थानं कुर्वः"।** इससे सूर्य की प्रत्यक्ष पूजा का ही बोध होता है।

विक्रमोर्वशीय के तृतीय अङ्क से यह ज्ञात होता है कि सज्जनों की धार्मिक क्रियाओं में सूर्यदेव की आराधना मुख्य रूप से होती थी, जिसके साथ-साथ चन्द्रमा का भी स्मरण किया जाता था। इसी अङ्क में आगे यह भी पता चलता है कि ग्रीष्म ऋतु में भगवान् भास्कर की उपासना विशिष्ट रूप से की जाती थी। इसीलिए चित्रलेखा कहती है - " **वसन्तानन्तरमुष्णसमये भगवान्सूर्यो मयोपचरितव्यः"|** सूर्योपासना राजा की दैनिक क्रियाओं का अङ्ग था। इसी रूपक के द्वितीय अङ्क के प्रवेशक से यह सूचना मिलती है कि जब से सूर्य की उपासना करके महाराज धर्मासन पर बैठे हैं, तब से वे खोए-खोए से लग रहे हैं।

रघुवंश तथा अभिज्ञानशाकुन्तल के वर्णन से यह पता चलता है कि सूर्यदेवता के सात घोड़े हैं, सभी हरे रंग के हैं, जो उसके रथ में जुते हुए हैं (**'सप्तसप्ति'** अभिज्ञान शाकुन्तल-6/30, **'हरिदश्वदीधिति'** - रघुवंश-3/22)। रघुवंश में कवि कहते हैं कि राजा अतिथि के दर्शन से पाप उसीप्रकार दूर भाग जाते थे, जिसप्रकार उदीयमान सूर्य के दर्शन से पाप दूर हो जाते है -

दुरितं दर्शनेन ध्वंस्तत्त्वार्थेन नुदंस्तमः।
प्रजाः स्वतन्त्रयाञ्चक्रे शश्वत्सूर्य इवोदितः।। - रघुवंश-17/74

VI. गौ-पूजा - भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही गाय का आदर और पूजन किया जाता रहा है। गौ को माता कहा जाता है। प्रातः काल में गौ का दर्शन शुभ माना जाता रहा है। लोक में गौ की महत्ता महाभाष्यकार पतञ्जलि के निर्देश से भी प्रकट होता है। उन्होंने शब्दानुशासन के प्रसङ्ग में **'केषां शब्दानाम्? लौकिकानां वैदिकानां च'** [8] कहकर लौकिक शब्दों में सर्वप्रथम 'गौ' की ही चर्चा की है। इससे लोक का महत्त्व तो स्पष्ट होता ही है, 'गौ' की महत्ता भी प्रकट होती है। इसीप्रकार निघण्टु, जिसकी व्याख्या 'निरुक्त' में की गई है, में सर्वप्रथम 'गौ' शब्द की ही निरुक्ति की गई है।

कालिदास ने गौ-पूजा के प्रति विशेष आस्था प्रकट की है। रघुवंश के द्वितीय सर्ग में कवि ने राजा दिलीप तथा रानी सुदक्षिणा के द्वारा गाय की भक्तिपूर्ण सेवा एवं पूजा किये जाने का वर्णन किया है। रानी सुदक्षिणा फूल, माला, चन्दन आदि विभिन्न द्रव्यों से नन्दिनी गौ की पूजा करती थी। गौ के सींगों के बीच चन्दन, अक्षत आदि लगाकर सुदक्षिणा उसकी विधिवत् प्रदक्षिणा किया करती थी। राजा दिलीप दिनभर गौ की सेवा वन में किया करते थे और गौ की रक्षा हेतु उसके बदले अपने शरीर की बलि देने के लिए भी उद्यत हो गए थे। अभिज्ञानशाकुन्तल से यह ज्ञात होता है कि राज-प्रासाद में नियमित यज्ञादि कर्म के लिए निर्मित यज्ञशाला, गायों से युक्त हुआ करती थी। यज्ञ कर्म के लिए उपयुक्त घृत, दूध आदि की सुलभता को ध्यान में रखकर गायों को यज्ञशाला के समीप ही रखा जाता था-

सन्निहित होमधेनुरग्निशरणालिन्दः। - अभिज्ञानशाकुन्तल- 5/9 से पूर्व

पौराणिक कथाओं एवं भारतीय अनुश्रुतियों में कामधेनु नामक गाय अत्यधिक ख्यात रही है। उसकी सेवा करने से पुत्र की प्राप्ति होती है, ऐसा माना जाता था। कालिदास ने भी इसका समर्थन किया है तथा कामधेनु के साथ-साथ उसकी पुत्री नन्दिनी को भी समकक्ष स्थान दिया है। दिलीप-दम्पती ने नन्दिनी गौ की सेवा करके ही रघु जैसे यशस्वी पुत्र को प्राप्त किया था।

इसके अतिरिक्त कालिदास ने शिव का वाहन वृष, विष्णु का वाहन गरुड़, शेषनाग, पार्वती का वाहन सिंह- इनसभी को देवत्व पद पर प्रतिष्ठित कर प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से पूजा-अर्चना किये जाने का सङ्केत दिया है। साथ ही रघुवंश में एक स्थान पर कवि वृक्ष-पूजा का भी उल्लेख करते हैं। वन से अयोध्या लौटते समय विमान पर राम सीता से कहते हैं कि देखो! यह वही वट-वृक्ष है, जिसकी तुमने पूजा कर मनौती मांगी थी। **(9)**

वस्तुतः, प्राचीन समाज में विविध दृष्टियों से गाय को महत्त्वपूर्ण माना जाता था। आर्थिक आदान-प्रदान का माध्यम भी गौ ही हुआ करती थी। मुद्रा के प्रचलन से पूर्व गौ ही धन-सम्पत्ति का सूचक थी। ऐसे में गौ की पूजा सहज एवं स्वाभाविक थी। वर्तमान हिन्दू-समाज में भी गौ को माता कहकर उसकी पूजा-अर्चना की जाती है।

VII. व्रत-उपवास-पारणा : - विविध धार्मिक-कृत्यों का व्यवहार अपने काव्यों में दिखलाने के प्रति सचेष्ट कालिदास व्रत एवं उससे सम्बद्ध उपवास-पारणा आदि का भी उल्लेख करते हैं। किसी विशिष्ट उद्देश्य अथवा कार्य-सिद्धि के निमित्त व्रत रखे जाते थे। राजा दिलीप एवं उनकी पत्नी सुदक्षिणा ने पुत्र-प्राप्ति के उद्देश्य से गौ-सेवा का व्रत रखा था **(व्रताय तेनानुचरेण धेनो.....**रघुवंश-2/4)। विहित नियमों के अनुसार व्रत के अनुष्ठान में व्रती को तदनुरूप ही आचरण तथा भोजन आदि करना पड़ता था। कालिदास कहते हैं कि यद्यपि वशिष्ठ जी चाहते तो अपनी तपस्या के प्रभाव से राजा दिलीप के योग्य राजसी भोजन और शयन का उचित प्रबन्ध कर सकते थे, परन्तु व्रत के नियमों को जानने के कारण उन्होंने राजा के व्रत के योग्य वन्य कन्दमूल का भोजन और चटाई का ही प्रबन्ध किया।

विक्रमोर्वशीय में उल्लेख हुआ है कि पत्नी अपने पति को प्रसन्न करने के लिए व्रत रखती थी **(प्रियप्रसादनव्रतम्)।** व्रत-विशेष के लिए विशिष्ट परिधान का भी विधान था **(विहितनियमवेषा राजमहिषी दृश्यते)।** काशीराज पुत्री ने व्रताचरण के समय शुक्ल वसन तथा मङ्गल आभूषण धारण कर अपने केशपास में पवित्र दूब के अंकुरों को सँजोई थी। स्त्री को पति के वियोग में व्रत रखना पड़ता था, जिसमें अलङ्कारों को त्यागकर साधरण वेश धारण करने का विधान था। विरहव्रता शकुन्तला की वेशभूषा देखकर स्वयं राजा दुष्यन्त कहते हैं

वसने परिधूसरे वसाना नियमक्षाममुखी धृतैकवेणिः।
अतिनिष्करुणस्य शुद्धशीला मम दीर्घं विरहव्रतं बिभर्ति।।

-अभिज्ञानशाकुन्तल-7/21

व्रत का मुख्य अङ्ग था उपवास। उपवास काल में कुछ संस्कार-विशिष्ट का अनुष्ठान चलता रहता था। व्रत की पारणा स्वल्पाहारग्रहण से होती थी यानी स्वल्पाहार (पारणा) द्वारा व्रत तोड़ा जाता था। अभिज्ञानशाकुन्तल के द्वितीय अङ्क में हस्तिनापुर से दुष्यन्त की माता वन में यह सन्देश पठाती है कि आगामी चौथे दिन मेरे उपवास की पारणा होगी। इस अवसर पर चिरञ्जीवी पुत्र आकर मुझे अवश्य सम्मानित करें-

"आगामिनि चतुर्थदिवसे प्रवृत्तपारणो मे उपवासो भविष्यति। तत्र दीर्घायुषाऽवश्यं संभावनीयेति"। इसीतरह रघुवंश में व्रत की पारणा हो जाने पर वशिष्ठ जी ने राजा दिलीप और रानी सुदक्षिणा दोनों को "तुम्हारा मार्ग सुखसाध्य हो" - ऐसा आशीर्वाद देकर उन्हें राजधानी (अयोध्या) के लिए विदा कर दिया था-

प्रातर्यथोक्तव्रतपारणान्ते प्रास्थानिक स्वस्त्ययनं प्रयुज्य।
तौ दम्पती स्वां प्रति राजधानी प्रस्थापयामास वशी वशिष्ठः।।

-रघुवंश-2/70

इसप्रकार, यह स्पष्ट होता है कि कालिदास के युग में व्रत एवं तत् सम्बद्ध उपवास एवं पारणा की प्रथा प्रचलित हो चुकी थी। इस सन्दर्भ में कवि यह भी निर्देश करते हैं कि तप व्रत, उपवास आदि जितने भी धार्मिक कृत्य हैं, उनमें शरीर की रक्षा करना सबसे पहला काम है - **"शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्"** (कुमारसम्भव-5/33)।

उपर्युक्त धार्मिक -कृत्य आज भी सम्पादित होते हैं। व्रत रखा जाना, उपवास करना तथा पारणा द्वारा व्रत समाप्त करना ये समस्त धार्मिक व्यवहार विशेषकर महिलाओं द्वारा आज भी व्यवहृत होते हैं।

VIII. प्रदक्षिणा - धार्मिक क्रियाओं में प्रदक्षिणा प्रमुख है। इसे परिक्रमा भी कहते हैं। किसी पूज्य वस्तु को अपने से दाहिनी ओर करके उसके चारों ओर घूमना प्रदक्षिणा कहलाता है। कालिदास इस धार्मिक कृत्य के प्रति विशेष श्रद्धा प्रकट करते हुए अपने काव्यों में अनेक स्थानों पर इसका व्यवहार दिखलाते हैं। अभिज्ञानशाकुन्तल के चतुर्थ अङ्क में पतिगृह को प्रस्थान करने वाली शकुन्तला को महर्षि कण्व निर्देश देते हैं कि - पुत्रि! अभी हवन की गई अग्नियों की प्रदक्षिणा करो - **"वत्से! इतः सद्योहुतानग्नीन् प्रदक्षिणीकुरुष्व"** और इस प्रदक्षिणा के परिणाम को वे आशीर्वाद के रूप में अभिव्यक्त करते हैं -

अमी वेदिं परितः क्लृप्तधिष्ण्याः समिद्धन्तः प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः।
अपघ्नन्तो दुरितं हव्यगन्धैर्वैतानास्त्वां वह्नयः पावयन्तु ||

-अभिज्ञानशाकुन्तल-4/8

विवाह-संस्कार के अनुष्ठान के समय हवन के अग्निकुण्ड की प्रदक्षिणा वर-वधू द्वारा किये जाने का व्यवहार भी कवि ने दिखलाया है। शिव-पार्वती तथा अज-इन्दुमती इनदोनों ही वर-वधू-युगलों द्वारा अग्निकुण्ड की प्रदक्षिणा करते समय कवि ने शब्दशः एक ही श्लोक का प्रयोग किया है। तदनुसार, जलती हुई अग्नि की परिक्रमा करते समय पार्वती और शंकर जी तथा इन्दुमती और राजा अज इसप्रकार शोभित हुए जैसे रात और दिन दोनों मिलकर सुमेरू पर्वत की प्रदक्षिणा कर रहे हों

प्रदक्षिणप्रक्रमणात् कृशानोरुदर्चिषस्तन्मिथुनं चकासे।
मेरोरुपान्तेष्विव वर्तमानमन्योन्यसंसक्तमहस्त्रियामम्।। **(10)**

गौ-सेवा-व्रत का पालन करती हुई रानी सुदक्षिणा नन्दिनी गौ की विधिवत् पूजा और प्रदक्षिणा किया करती थी। राजा दिलीप ने वशिष्ठाश्रम से राजधानी के लिए प्रस्थान करते समय अग्निसहित हवनकुण्ड की, गुरुवशिष्ठ की, माता अरुन्धती की और बछड़े के साथ बैठी नन्दिनी की परिक्रमा की थी

प्रदक्षिणीकृत्य हुतं हुताशमनन्तरं भर्तुररुन्धतीं च।
धेनुं सवत्सां च नृपः प्रतस्थे सन्मङ्गलोदग्रतरप्रभावः।। - रघुवंश-2/71

इसीतरह दिग्विजय-यात्रा के लिए प्रस्थान करते समय जब प्रदक्षिणा की जा रही थी, तब हवन की अग्नि इस प्रकार उठ रही थी कि मानो अपने हाथ रघु को विजय का आशीर्वाद दे रही हो-

प्रदक्षिणार्चिर्व्याजेन हस्तेनेव जयं ददौ। -रघुवंश-4/25

वस्तुतः आज भी लोग मन्दिर, मूर्ति अथवा किसी पूज्य वस्तु की परिक्रमा किया करते हैं। धार्मिक अनुष्ठान अथवा पूजा-अर्चना के अन्त में श्रद्धालुजन इस उद्देश्य से प्रदक्षिणा किया करते हैं कि उसके जन्म-जन्मान्तर के पाप नष्ट हो जाएँ -

यानि कानि च पापानि जन्मान्तर कृतानि च।
तानि सर्वाणि नश्यन्तु प्रदक्षिणा पदे पदे।।

IX. नीराजना - किसी देवता की प्रतिमा अथवा दिग्विजय से लौटे हुए राजा की दीपों से आरती उतारना नीराजना कहलाता है। देव-प्रतिमा के सन्दर्भ में इसे सामान्यतया संध्याकालीन पूजा कहा जा सकता है। कालिदास ने अपने काव्यों में इसका व्यवहार दिखलाया है।

मेघदूत में उज्जयिनी का वर्णन करते हुए कवि मेघ से आग्रह करते हैं कि हे मेघ !

किसी भी काल में तुम महाकाल-मन्दिर के समीप पहुँचो किन्तु तुम्हें वहाँ संध्याकाल तक ठहरना चाहिये। शिव जी की संध्या-पूजा (नीरजना) के समय यदि तुम नगाड़े की ध्वनि कर सको तो तुम्हारा धीर-गम्भीर गर्जन सफल हो जाएगा -

अप्यन्यस्मिञ्जलधर महाकालमासाद्य काले
स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदत्येति भानुः।
कुर्वन्सन्ध्याबलिपटहतां शूलिनः श्लाघनीया
मामन्द्राणां फलमविकलं लप्स्यसे गर्जितानाम्।।

-पूर्व मेघ- 34

इससे यह ज्ञात होता है कि उस समय भी मन्दिर में देवता की प्रतिमा के समक्ष नियमित सन्ध्या-पूजा (नीराजना) की जाती थी, जिसमें जनसमुदाय भी उपस्थित रहते थे। साथ ही, "पादन्यासैः क्वणितरशनास्तत्र लीलावधूतैः [(11)] इत्यादि निर्देश से यह भी पता चलता है कि नीराजना के समय नृत्य-सङ्गीत आदि भी हुआ करते थे, जैसा कि आजकल मन्दिरों में आरती के समय भजन-कीर्तन आदि देखे जाते हैं।

विक्रमोर्वशीय के तृतीय अङ्क से यह पता चलता है कि राजा सायंकाल में नियमित सन्ध्या-पूजा किया करते थे। उस समय अन्त:पुर को दीपकों से सजाया जाता था। वे दीपक मङ्गलकारक होते थे (**सन्ध्यामङ्गलदीपिका**-विक्रमोर्वशीय 3/2)।

रघुवंश (17/12) में कालिदास ने राजा अतिथि के राज्याभिषेक के समय बड़े-बुजुर्गों द्वारा उनकी आरती किये जाने का उल्लेख किया है - ज्ञातिवृद्धैः प्रयुक्तान्स भेजे नीराजनाविधीन्। इसी काव्य में कवि ने यह भी व्यवहार दिखलाया है कि दिग्विजय के लिए प्रस्थान करने से पूर्व हस्ति अश्व इत्यादि की नीराजना की जाती थी -

तस्मै सम्यग्धुतो वह्निर्वाजिनीराजना विधौ। - रघुवंश-4/25

इस सन्दर्भ में डॉ. भगवतशरण उपाध्याय कहते हैं कि सैनिकों द्वारा एक विशेष प्रकार का सैनिक संस्कार किया जाता था जो '**वाजिनीराजना**' कहलाता था। संग्राम में जाने के पूर्व आश्विन नवमी या कार्तिक शुक्लपक्ष अष्टमी, द्वादशी या त्रयोदशी को यह राजा अथवा सेनानायक के द्वारा सम्पादित होता था। [(12)]

वस्तुतः नीरजना अत्यन्त माङ्गलिक धार्मिककृत्य है। मन्दिरों में अथवा किसी भी प्रतिमा के समक्ष तो आरती दिखलाई ही जाती है, जैसा कि महाकाल मन्दिर के सन्दर्भ में कवि ने वर्णन किया है, साथ ही विजय प्राप्त कर लौटे राजाओं की भी नीराजना की जाती है। इतना ही नहीं, कोई भी व्यक्ति किसी भी उत्कृष्ट क्षेत्र में विजयी होकर घर लौटता है तो उसकी आरती की जाती है। अतिथि-सत्कार एवं विवाह के अवसर पर वर का स्वागत आरती दिखाकर करने की प्रथा भी देखी जाती है। अतएव यह धार्मिक-कृत्य सामान्य माङ्गलिक-कार्य का पर्याय बन चुका है तभी तो रक्षा-बन्धन के समय एक बहन अपने भाई की आरती उतारती है।

XI. नदी-सङ्गम-स्नान : - भारतवर्ष में प्राचीनकाल से नदियों एवं उनके सङ्गम-स्थल पर स्नान करने को महत्त्व दिया गया है। पवित्र नदियों एवं सङ्गम में किए गए स्नानादि पुण्य कार्य मनुष्यों को मोक्ष तथा लौकिक अभ्युदय देते हैं, ऐसी भावना शास्त्रों में प्रकट की गई है।

महाकवि कालिदास भी नदियों एवं सङ्गम में किए गए स्नान को प्रमुख धार्मिक कार्य मानते हैं। उन्होंने अपने काव्यों में गङ्गा, यमुना, सरस्वती, तमसा, सरयू आदि सभी प्रमुख नदियों एवं उनके सङ्गम में स्नान किये जाने को महत्त्वपूर्ण माना है।

रघुवंश में कवि गङ्गा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि महर्षि अत्रि की पत्नी अनुसूया ने ऋषियों के स्नान के लिए उन त्रिपथगा (गङ्गा जी) को यहाँ ले आई हैं, जो शिव जी के सिर पर माला जैसी सुन्दर लगती हैं।[13] ब्रह्मावर्त की सरस्वती नदी को कालिदास अन्त:करण को पवित्र करने वाली कहते हैं (**सरस्वतीनाम् अपाम्**.....पूर्वमेघ-53)। तमसा नदी के प्रसङ्ग में निर्वासिता सीता से महर्षि वाल्मीकि कहते हैं कि यह तमसा नदी तमोगुण को मिटानेवाली है, जिसके तट पर तपस्वी लोग सदा रहा करते हैं। हे सीते ! तुम उसमें स्नान करके उसकी रेती पर देवताओं की पूजा किया करो। इससे तुम्हारा मन प्रसन्न रहा करेगा -

अशून्यतीरां मुनिसन्निवेशैस्तमोपहन्त्रीं तमसां वगाह्य।
तत्सैकतोत्सङ्गबलिक्रियाभि: सम्पत्स्यते ते मनस: प्रसाद:।।

- रघुवंश-14/76

सरयू नदी के प्रसङ्ग में कालिदास कहते हैं कि भक्तवत्सल राम विमान पर चढ़कर स्वर्ग चले गए और सरयू को उन्होंने अपने पीछे आनेवालों के लिए स्वर्ग की सीढ़ी बना दिया। [14] अर्थात् जो सरयू में स्नान करता था, उसे स्वर्ग की प्राप्ति होती थी। अतएव वहाँ पर स्नानार्थियों की वैसी ही भीड़ हुई जैसे गायों को नदी पार कराते समय होती है। इसीलिए वह पवित्र स्थान 'गोप्रतरतीर्थ' के नाम से प्रसिद्ध हो गया था। वस्तुतः नदी की पावनता के प्रभाव से वह स्थानविशेष 'तीर्थ' की संज्ञा पाता था। ऐसे तीर्थ में किया गया स्नान मानव को पावन कर देता था। इसीलिए कवि कहते हैं कि नन्दिनी के आते समय उसके पैरों से उड़ी हुई धूल के लगने से राजा दिलीप वैसे ही पवित्र हो गए, जैसे किसी तीर्थ में स्नान करके लौटे हों तीर्थाभिषेकजुषां शुद्धिमादधाना महीक्षित:।[15] नदी-स्नान के साथ-साथ विभिन्न नदियों के सङ्गम-स्नान का भी माहात्म्य कवि ने बतलाया है। तिथि-विशेष पर सङ्गम-स्नान का विशेष महत्त्व था। विक्रमावशीय के पञ्चम अङ्क के प्रवेशक से यह सूचना मिलती है कि आज तिथि-विशेष होने के कारण राजा पुरूरवा गङ्गा और यमुना के सङ्गम में देवियों के साथ स्नान करके अभी रनिवास में गए हैं। कालिदास स्पष्ट कहते हैं कि गङ्गा-यमुना के सङ्गम में स्नान करनेवाले को तत्त्वज्ञान के विना भी मोक्ष की प्राप्ति होती है -

समुद्रपत्न्योर्जलसन्निपाते पूतात्मनामत्र किलाभिषेकात्।
तत्त्वावबोधेन विनापि भूयस्तनुत्यजां नास्ति शरीरबन्ध:।।

- रघुवंश-13/58

राजा अज ने गङ्गा और सरयू के सङ्गम में शरीर त्यागकर देवत्व प्राप्त किया था। [16] इसप्रकार, कालिदास के युग में नदी-सङ्गम-स्नान प्रचलित था। आज भी इसे लोग पवित्र धार्मिक-कृत्य मानते हैं। वस्तुतः कालिदास के **"तत्त्वावबोधेन विनापि"** का निर्देश इस धार्मिक कृत्य पर अक्षरशः घटित होता है क्योंकि यज्ञादि धार्मिक कार्यों के समान नदी-सङ्गम-स्नान के लिए विशिष्ट ज्ञान की अपेक्षा नहीं रहती है। ज्ञानी-अज्ञानी, धनी-निर्धन सभी व्यक्तियों के लिए यह सुकर होता है। अतएव आज भी नदियों एवं उनके सङ्गम पर स्नान करना प्रमुख धार्मिक कार्यों में से एक है।

निष्कर्ष : - कालिदास के ग्रन्थों में चित्रित धार्मिक क्रियाएँ प्राचीन संस्कृति के वर्तमान स्वरूप का दर्शन कराती हैं। आज के अर्थप्रधान समाज में भी धर्म की प्रासंगिकता अक्षुण्ण है। यज्ञ और दान आदि धार्मिक क्रियाओं का आयोजन सामाजिक समानता और समरसता को प्रदर्शित करता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ:-

1. रघुवंश- 3/38
2. रघुवंश- 10/4
3. रघुवंश- 16/25
4. रघुवंश- 9/72
5. रघुवंश- 18/24
6. कुमारसंभव- 7/27
7. कालिदास का भारत, भाग-2, पृष्ठ-147
8. महाभाष्य- पस्पशाह्निक (पतञ्जलि कृत)
9. रघुवंश- 13/47
10. कुमारसम्भवम्- 7/79 तथा रघुवंशम् - 7/24
11. मेघदूत-1/35
12. कालिदास का भारत, भाग-1, पृष्ठ-272
13. रघुवंश- 13/15
14. रघुवंश- 15/100
15. रघुवंश- 1/85
16. रघुवंश- 8/95